(खण्ड–ई)
कथक नृत्य

अध्याय 19

अ. परिभाषाएं
ब. गीत शैलियों का ज्ञान

अ. परिभाषाएं

नाट्य, नृत्त, तथा नृत्य

गीतंवाद्यं नृत्यं च त्रयं संगीत मुच्यते।

शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर के अनुसार गायन वादन व नृत्य तीनों कलाओं के समावेश को संगीत कहते हैं। तीनों कलाएँ एक दूसरे से स्वतंत्र होते हुए भी एक सूत्र में बद्ध है। तीनों कलाओं के परस्पर आपसी संबंध के कारण ही संभवतः संगीत मनीषियों ने "संगीत" नाम सृजित किया है। शारंगदेव की उपरोक्त वर्णित परिभाषा में 'नृत्य', 'नर्तन' अथवा 'नटन' शब्द से वर्णित अंग के तीन भेद माने जाते हैं–

नर्त्तन		
नाट्य	**नृत्त**	**नृत्य**
रसाश्रित	ताल व लयाश्रित	भावाश्रित
वाक्याभिनययुक्त	भावशून्य	संयुक्त

एतच्चतुर्विधोपेतं नटनं त्रिविधं स्मृतम्।नाट्य नृत्यं नृत्तमिति मुनिभिर्भरतादिधिः।। –अभिनय दर्पण

अर्थात चार प्रकार के अभिनय (आंगिक, वाचिक, सात्विक, आहार्य) से युक्त नटन (नर्तन) क्रिया भरत आदि मुनियों के अनुसार तीन प्रकार की होती है – नाट्य, नृत्त, तथा नृत्य। नृत्त या नृत्य की अपेक्षा वर्तमान में अंगेजी शब्द डांस (Dance) का प्रचलन अधिक है।

नाट्य– "नाट्य तन्नाटकं चैव पूज्यं पूर्वकथायुतम्"। – अभिनय दर्पण

अर्थात– प्राचीन कथा अथवा चरित्र पर आधारित अभिनय नाट्य कहलाता है, जिसे जन मानस में सम्मान प्राप्त हो।

नाट्य को उक्त कथन में और अधिक सरलता से समझाया गया है – "वाक्यार्थाभिनय रसाश्रयं नाट्यम"। अर्थात् किसी वाक्य के अर्थ को अभिनय द्वारा प्रदर्शित या व्यक्त कर रस (आनंद) सृजन, नाट्य है। नाट्य का अर्थ नाटक है।किसी वाक्य के अर्थ को अभिनय द्वारा प्रकट करके, जो रस उत्पन्न किया जाता है, उसे नाट्य कहते हैं। दैनिक जीवन में मनुष्य के चारों ओर जो कुछ क्रिया–कलाप होते रहते हैं, वे सब नाट्य हैं। मन के भावों को अंग चेष्टा द्वारा प्रकट करना अभिनय कहलाता है। नाट्य के अंतर्गत चार अंग समाहित है – 1 आंगिक 2 वाचिक 3 आहार्य 4 सात्विक। नाट्य के प्रणेता के रूप में भरत को ही माना जाता है। भरत का नाट्य शास्त्र इस परम्परा का मूल ग्रंथ है।

नृत्त– "भावाभिनयहीनं तु नृत्तमित्यभिधीयते" अभिनय दर्पण अर्थात–अभिनय व भावरहित नर्त्तन को नृत्त कहा जाता है। ताल और लय के साथ शुद्ध नर्तन क्रिया को नृत्त कहते हैं। इसमें भावनाओं के प्रदर्शन का महत्त्व नहीं होता, केवल लय व ताल के साथ अंग संचालन आवश्यक होता है। शास्त्रों में 'नृत्त' क्रिया को शुभ माना गया

है। यह कला नित्य ही शुभ अवसरों पर जैसे – राज्याभिषेक महोत्सव, विवाह, देवमूर्ति की यात्रा, पुत्रजन्म, गृहप्रवेश, आदि मांगलिक कार्यों में किया जाने वाला कला प्रदर्शन है। अभिनय तथा भाव रहित नर्तन को नृत्त कहते हैं। दशरूपक के आचार्य ने नृत्त का अन्य शब्दों में वर्णन लिखा है –नृत्ततालललयाश्रयम्' अर्थात् – नृत्त ताल ओर लय पर आश्रित है। कथक के अंतर्गत ठाठ, परन, टुकड़े, ततकार के पलटे तथा उपज अंग में गणना आधारित कार्य शुद्ध नृत्त की श्रेणी में आते हैं। सभी शास्त्रीय नृत्यों में कथक का नृत्त अंग अति विशिष्टता लिए हुए है। इसके अतिरिक्त 'सिंक्रोनाइज्ड जिमनास्टिक', 'एरोबिक्स' एवं 'बैले' आदि इसके उदाहरण हैं।

नृत्य– "रस भाव व्यंजनादियुक्तं नृत्यं मितीर्यते"– अभिनय दर्पण

रस व भाव व्यंजना युक्त नर्त्तन क्रिया नृत्य कहलाती है। नृत्य के अंतर्गत ताल लय पर अंग संचालन के साथ भावों का समन्वय होता है। जब नाट्य और नृत्त, दोनों मिल जाते हैं, तो वह 'नृत्य' बन जाता हैं अर्थात्– किसी भी शब्द का अभिनय जब ताल और लय के साथ किया जाये, तो वह 'नृत्य कहलाता है। कथक नृत्त में जब केवल पैरों का काम दिखाया जाता है, तो उस समय उसकी संज्ञा 'नृत्त' होती है, और नृत्त के साथ भिन्न–भिन्न भावों का प्रदर्शन किया जाता है, तो वह नृत्य कहलाता है। नृत्य भाव व रस पर आधारित है।

तांडव एवं लास्य

तांडव

जिस नृत्य में वीर–रस का प्रदर्शन होता है, उसे 'तांडव' कहते है। तांडव नृत्य पुरूषों के लिए अधिक उपयुक्त है, क्योंकि उसमें कुछ ऐसे अंगहारों का प्रदर्शन किया जाता है, जो पुरूष प्रधान है। तांडव स्त्री और पुरूष दोनों के द्वारा किये जा सकते हैं। शास्त्रों के अनुसार सात "ताण्डव नृत" हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं–1 आनन्द 2 संध्या 3 कालिका 4 त्रिपुर 5 संहार । इसके अतिरिक्त दो तांडव, जो शिवजी ने पार्वती के साथ किये हैं – 6 गौरी 7 उमा। वीर रस, वीभत्स रस, भयानक रस, प्रलयकारी रूप दर्शाने वाला नृत्त ताण्डव नृत्त के अन्तर्गत आते है। तांडव में शिव की पंच क्रियायें, सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव, व अनुग्रह को प्रदर्शित किया जाता है। नृत्य में वीरता, रौद्रता, आवेश व क्रोध का भाव रहता है। शास्त्रों में तांडव का प्रतीक 'शिव' को माना है।

लास्य

स्त्री श्रृँगार और कोमलता की प्रतीक है, इसलिए उसके द्वारा केवल नृत्य का प्रदर्शन ही लोक–रंजक होता है। जिस तरह तांडव स्त्री–पुरूष दोनों के द्वारा किया जा सकता है, उसी तरह लास्य भी स्त्री–पुरूष दोनों के द्वारा किया जा सकता है। शास्त्रोंक्त मान्यता है कि लास्य के अंगों को सफलतापूर्वक प्रदर्शित करने हेतु श्री कृष्ण ने 'रास–मण्डल' की स्थापना की। रास के अन्तर्गत अनेक प्रकार के नृत्यों का जन्म हुआ। रास–नृत्य को 'हल्लीसक' भी कहते है। इसमें गीत, वाद्य, नृत्त और अभिनय सभी का समावेश था। श्रृँगार, भक्ति, वात्सल्य आदि रसों से युक्त जिनमें माधुर्य, सुन्दरता, कोमलता आदि हो, लास्य नृत के अन्तर्गत आते है। श्रृँगार प्रधान, लावण्यमयी व विलासयुक्त नृत्य ही लास्य नृत्य कहलाते हैं। शास्त्रों में लास्य का प्रतीक 'पार्वती' को माना है।

चतुर्विध अभिनय

'अभि' अर्थात् 'की ओर' तथा 'नय' अर्थात् 'ले जाना' अर्थात् रचनाकार के भाव की ओर दर्शकों को ले जाना। भारतीय सौंदर्यशास्त्र में अभिनय को संप्रेषण व प्रदर्शन कलाओं के अंतर्गत माना है। रंगमंच पर श्रोता व दर्शकों को भाव व रसास्वादन कराने की क्रिया को अभिनय कहा है। अभिनय का सम्बन्ध 'नाट्य' से है। मनुष्य की चेष्टाएँ–सोचना, बोलना, करना आदि का नाट्य प्रयोग अभिनय है। रूपकों के अर्थ को आंगिक, वाचिक, सात्विक व आहार्य अभिनय द्वारा स्पष्ट रूप से व्यक्त कर दर्शकों के मन में रसोत्पति करना अभिनय है। अभिनय के चार अंग है–आंगिकों वाचिकश्चैन आहार्य सात्विकस्तथा।

चत्वारोऽभिनया ह्येते विज्ञेया नाट्यसंश्रयाः।। –नाट्यशास्त्र

पद्मभूषण स्व. कलानिधि नारायणन

आंगिक– अभिनय प्रस्तुति में शारीरिक, अंग, प्रत्यंग व उपांग के प्रयोग द्वारा भाव अभिव्यक्ति आंगिक है।

6 अंग – सिर, हाथ, वक्ष, पार्श्व, कटि व पैर

6 प्रत्यंग – कंधे, बांहे, पीठ, उदर, उरू, जंघाएँ

12 उपांग – नेत्र, भौंह, पलक, पुतलियाँ, कपोल, नासिका, जबड़ा, अधर, दांत, जिव्हा, ठोड़ी व मुख।

उपरोक्त अंग, प्रत्यंग व उपांग आंगिक अभिनय के साधन हैं, जिनके माध्यम से मनोगत भावों को प्रकट करना अभिनय का आंगिक पक्ष है। पनघट से पानी लाती नायिका, शर्माना, वृद्ध व्यक्ति की चाल आदि सब।

वाचिक– कविता, शब्द, वाणी, गीत द्वारा प्रस्तुत अभिनय वाचिक अभिनय कहलाता है। महर्षि भरत ने वाक् को नाट्य का शरीर कहा है। आंगिक, सात्विक व आहार्य तीनों अंग वाक्यार्थों को ही अभिव्यक्त करते हैं। अतः 'वाचिक' अंग का महत्त्व अधिक है। नृत्य करते समय वंदना, आमद, छंद, भजन, पद, ठुमरी तथा नाट्य में संवाद आदि में वाचिकाभिनय का योगदान रहता है।

आहार्य– नृत्य अथवा नाट्य में विभिन्न पात्रों की भिन्न–भिन्न प्रकृति, अवस्था आदि को वस्त्र, आभूषणों, रूप सज्जा, व मंच पर प्रस्तुत आकृतियों द्वारा प्रभावी बनाना आहार्य अंग कहलाता है। यदि पात्र उचित आहार्य के साथ आंगिक, वाचिक व सात्विक अभिनय करता है तो अभिव्यक्ति में आसानी व रसास्वादन में अनूकुलता रहती है। आहार्य द्वारा दर्शकों को देश, काल, प्रकृति व अवस्था के ज्ञान में सुगमता रहती है।

सात्विक – अभिनय दर्पण में आंगिक, वाचिक व आहार्य अभिनय अंग को बाह्य माने गये हैं। अभिनय की क्षमता का सफल प्रदर्शन सात्विक द्वारा ही सिद्ध माना है। सात्विक अभिनय को साक्षात् शिव का स्वरूप कहा है। पसीने–पसीने होना, रोमांचित होना, आंसू निकलना, वाणी का लडखड़ाना, मूर्छित होना, मुखाकृति में भावयुक्त बदलाव लाना, स्तंभित होना आदि सात्विक अभिनय कहलाते हैं।उपरोक्त चारों प्रकार के अभिनय के सूक्ष्म अभ्यास द्वारा कला को शुद्ध व प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है।

प्रमेलु / प्रमलु

परमेलु, परमिलु, प्रिमलु आदि नामों से प्रचलित नृत्य की एक विशेष बंदिश है। 'पर' अर्थात् दूसरा तथा 'मिलु' अर्थात् मिलना 'दूसरे का मिलना'। किन्हीं दो या उससे अधिक प्रकार के बोलों के मेल से बनी रचना प्रमेलु कहलाती है।'प्रमलु' की बंदिश में नाच के बोलों के साथ ढोलक, पखावज, नगाड़ा, मंजीरा, तबला, झांझ आदि ताल वाद्यों के बोलों के साथ कभी–कभी पक्षियों की बोलियों को भी सम्मिलित किया जाता है।कथक नृत्य की सभी शैलियों में उक्त प्रकार की बंदिशों को अपनाया गया है, और करीब–करीब सभी नर्त्तक अपने–अपने ढंग से 'परमिलू' की बंदिश नाचते हैं। 'परमिलू' की बंदिश के टुकड़े कथक नृत्य में अपना विशेष स्थान रखते हैं। कुकु, झिझि, त्वं किटिकिट, कूक, खिर्र, धुन धुन थर्र आदि इस प्रकार के बोल 'परमिलू' की बंदिश में अधिक प्रयोग किये जाते हैं।

जैसे– **जगजग थोऽऽम जगजग थोऽऽम जगथोऽ ऽमजग थोऽऽम जगजग,**
जगजग जगजग जगजग थोऽऽम झेंऽकुकु झेंऽकुकु झननन झननन,
झेंऽकुकु धिलांग झेंऽकुकु धिलांग झेंऽकुकु झेंऽकुकु धिलांग धिलांग,
झेंऽकुकु धिलांग धाऽऽऽ झेंऽकुकु धिलांग धाऽऽऽ झेंऽकुकु धिलांग।

संयुक्त हस्त मुद्रा

मनोभावों को व्यक्त करने में जो संकेत सहायक सिद्ध हुए, कालान्तर में उन्हें मुद्रा की संज्ञा प्रदान की गई। नर्त्तक की दृष्टि से वाणी के अभाव में आन्तरिक इच्छाओं या भावों को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त हाथों एवं अँगुलियों को, जो एक विशिष्ट रूप देकर उनका संचालन करते हैं, उस संचालन के विशिष्ट रूप को ही 'मुद्रा' कहते हैं। प्राचीनकाल से ही नृत्य में मुद्रा का एक विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। नर्तक के लिए मुद्रा एक भाषा का कार्य करती है, जिसके माध्यम से वह अपने भावों को व्यक्त करता है, तथा अपनी मुद्राओं द्वारा ही वह दर्शक तक अपने भावों को पहुँचाता है।'मुद्रा' शब्द के अर्थों में क्रय–विक्रय में उपयोग आने वाला माध्यम, चिन्ह या मोहर तथा आंतरिक इच्छा व भावों को व्यक्त करने हेतु हाथों व अँगुलियों का विशिष्ट रूप में संचालन प्रमुख है। भाषा व शब्द के अभाव में भी हस्त मुद्रा भाव संप्रेषण किया जा सकता है। मूक बधिर व्यक्तियों की भाषा तो पूर्णतः मुद्राओं पर आधारित है।अभिनय दर्पण में दो प्रकार की हस्त मुद्राओं का विस्तृत उल्लेख है–

अंसंयुताः संयुताश्च हस्तद्वेधा निरूपिता।
तत्रा संयुत हस्तानामादौ लक्षणमुच्यते।।

1. असंयुक्त हस्त मुद्रा– एक हाथ के प्रयोग द्वारा प्रदर्शित मुद्रा असंयुत हस्त मुद्रा कहलाती है। इनकी संख्या 28 है। इनका उल्लेख पाठ्यपुस्तक कक्षा 11 में किया जा चुका है।

2. संयुक्त हस्त मुद्रा– दोनों हाथों के प्रयोग से प्रदर्शित मुद्रा संयुत हस्त मुद्रा कहलाती है। अभिनय दर्पण में इनकी संख्या 23 मानी गई है। अंजलि, कपोत, कर्कट, स्वस्तिक, पुष्पपुट, उत्संग, शिवलिंग, कटकावर्धन, कर्तरी स्वस्तिक, शकट, शंख, चक्र, संपुट, पाश, कीलक, मत्स्य, कूर्म, वराह, गरूड, नागबंध, खटवा, भेरूण्ड, डोला आदि।

	हस्तमुद्रा	अर्थ / प्रयोग
1	अंजलि	प्रस्ताव,सम्मान
2	कपोत	कबूतर
3	कर्कट	केकड़ा
4	स्वस्तिक	शुभसंकेत
5	पुष्पपुट	फूलोंसेभरेहाथ
6	उत्संग	माला,शरमाना
7	शिवलिंग	भगवानशिवकालिंगस्वरूप
8	कटकावर्धन	श्रृंखला,कड़ी,विवाह
9	कर्तरीस्वस्तिक	दो कैंची, शाखाएँ
10	शकट	गाड़ी
11	शंख	शंख–खोल
12	चक्र	भगवानविष्णुकाअस्त्र

	हस्तमुद्रा	अर्थ / प्रयोग
13	संपुट	गोलआकारडिबिया,ढकना
14	पाश	रस्सियां, बंधन
15	कीलक	मैत्रीवार्ता
16	मत्स्य	मछली
17	कूर्म	कछुआ
18	वराह	सूअर
19	गरूड	भगवानविष्णु के पक्षी
20	नागबंध	सांपकाजोडा
21	खटवा	खाट
22	भेरूण्ड	पक्षियों की एक जोड़ी
23	डोला	नृत्यारंभ, वाद्य वादक

(ब) गीत शैलियों का ज्ञान

ठुमरी

भारतीय संगीत की एक उपशास्त्रीय गायन शैली है। ठुमरी शब्द से तात्पर्य ठुमकना अर्थात् नृत्यगत चाल। ठुमरी का संबंध नृत्य, श्रृँगारिक काव्य, तथा उत्तर प्रदेश की लोक शैली से है। कृष्ण की लीलाओं का चित्रण काव्य में अधिक मिलता है।

पद्म विभूषण गिरिजा देवी

कथक नृत्य में जिन गीत शैलियों का प्रयोग किया जाता है, उनमें 'ठुमरी' भी एक बोल प्रधान गायकी है। राग की शुद्धता का इसमें विशेष महत्त्व नहीं होता, लेकिन शास्त्रीय संगीत की सभी विशेषताएँ इसमें मिलती हैं। ध्रुपद जैसी लयकारी, ख्याल की स्वर बद्धता और टप्पा–अंग की तानों जैसी विशेषताएँ 'ठुमरी' में पाई जाती है। 'ठुमरी' की दो शैलियाँ मानी जाती हैं– 1 पूर्वी अंग 2 पंजाबी अंग। 'ठुमरी' में ब्रज, अवधी और भोजपुरी जैसी भाषाओं का प्रयोग किया जाता है। पहली में बोल बाँट व बोल बनाव की प्रधानता रहती है, इसलिये नृत्य के साथ उसे काफी गाया जाता है। पूरब अंग ठुमरी ही कथक नृत्य में अधिक प्रयुक्त होती है। दूसरे प्रकार की 'ठुमरी' विलम्बित लय में गायी जाती है। इसमें टप्पे की छोटी तानें तथा पंजाब के लोक–संगीत का रंग रहता है। शब्दों के द्वारा विभिन्न भावों को प्रकट करना 'ठुमरी' गायन की विशेषता मानी जाती हैं। माधुर्य, कोमलता, चैनदारी, कल्पनाशीलता, चपलता और गंभीरता जैसे सभी गुण 'ठुमरी' में पाये जाते हैं। इसमें दीपचन्दी, दादरा, तीनताल, पंजाबी ठेका तथा अद्धा इत्यादि तालों और भैरवी, खमाज, पीलू, काफी, तिलक–कामोद, जोगिया, गारा, देस, पहाड़ी और झिंझोटी जैसे रागों का प्रयोग किया जाता है। ठुमरी के रचनाकारों में बिंदादीन महाराज, सनेहपिया, ललन पिया, अख्तर पिया, मौजुद्दीन, भैया गणपतराव प्रमुख हैं। उदाहरण–

मोहे छेडो न नन्द के सुनहुं छैल
बड़ी देर भई, घर जाने दे मोहे
तोरी पइयां परूं मोरी रोको न गैल
पकरो न कर ब्रज नारी देखे सारी "ठाडी
ननद सुनेगी देगी गारी तुम मानों नाही
बिंदा सुनो ये जिया राखत मैल"।। रचना–बिंदादीन महाराज

गज़ल व ठुमरी साम्राज्ञी बेगम अख्तर

प्रख्यात ठुमरी गायकों में – बड़ी मोतीबाई, रसूलन बाई, सिद्धेश्वरी देवी, गिरिजा देवी, पं छन्नूलाल मिश्र, गौहर जान, शोभा गुर्टु, नैना देवी, सविता देवी आदि है। प्रख्यात ख्याल गायक – अब्दुल करीम खां, नजाकत अली– सलामत अली, बडे गुलाम अली, भीमसेन जोशी, प्रभा अत्रे भी ठुमरी गायन हेतु प्रसिद्ध हैं।

भजन

'किं नाम भजनम् ? भजनम्' नाम रसनम्' यह आत्मिक रस प्राप्ति की एक प्रक्रिया है। भजन का तात्पर्य आत्मिक संबंध, स्मरण, पूजा, प्यार, विश्वास, आध्यात्मिक व दैनिक शक्ति के प्रति भावनात्मक जुड़ाव के अर्थों में प्रयुक्त गीत है।हिंदी व अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में वैष्णव, हिंदु, जैन, सिक्ख आदि परंपराओं द्वारा धार्मिक, आध्यात्मिक, ईश्वर संबंधी पद जो भक्ति भाव से ओत–प्रोत होकर गाये जाते हैं, भजन कहलाते हैं।

प्रमुख संत संगीतज्ञ एवं रचनाकार

मीराबाई

सूरदास

कबीरदास

तुलसीदास

इनमें अनेक अन्तरे होते हैं। भजन तीनताल, कहरवा, दादरा, रूपक आदि तालों में गाया जाता है। इनके गायन में राग की शुद्धता की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। मींरा, सूर, तुलसी, कबीर, गोरख आदि की रचनायें इसी श्रेणी में आती है। सुन्दरता की दृष्टि से, खटका, मीड़, मुरकी, कण आदि का प्रयोग आवश्यकतानुसार किया जाता हैं। भजन–गायन में आलाप व तान का प्रयोग नहीं के बराबर होता है। भजन एकल व सामूहिक दोनों रूपों में तथा घर, मंदिर, खुले प्रांगण, वृक्ष के नीचे तथा ऐतिहासिक व धार्मिक महत्त्व के स्थानों पर गाये जाते हैं। भजन की सगुण, निर्गुण, गोरखपंथी, अष्टछाप, वल्लभपंथी, दक्षिणी शैली आदि अनेक परम्परायें हैं। पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर एवं पं. भातखंडे ने भजन को शास्त्रीय संगीत से जोड़ने का प्रयत्न किया। पं. कुमार गंधर्व, ओंकार नाथ ठाकुर, पुरूषोत्तम दास जलोटा, हरिओम शरण, कृष्णदास आदि कलाकार भजन गायन के लिए प्रसिद्ध है।

भारतीय परिवेश में जीवन के प्रत्येक अवसर पर भजन मंडलियों या पारिवारिक महिला अथवा पुरूष समूहों द्वारा भजन संध्या आयोजित करवाने का चलन हैं। संगीत के क्षेत्र में भजन गायकों को वर्ष भर रोजगार प्राप्त होता रहता है।

पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर व पं. भातखंडे ने भजन शैली को शास्त्रीय संगीत से जोड़ने का प्रयत्न किया।

चतुरंग

चतुरंग गायन अधिक प्राचीन नहीं है। इस प्रकार के गायन ख्याल की तरह ही गाये जाते हैं। 'चतुरंग' गायन के चार अंग होते हैं – (1) पद (2) तराना (3) सरगम (4) त्रिवट। चारों भाग एक ही राग में निबद्ध होते हैं।

पहले अंग में गीत के शब्द होते हैं। दूसरे अंग में जिस राग का 'चतुरंग' होता है, उसी राग में बँधी हुई तराने की रचना होती है। तीसरे अंग में सरगम होती है। चौथे अंग में तबले अथवा मृंदग की छोटी–सी परन होती है। चतुरंग की रचना मध्य अथवा द्रुत लय में प्रस्तुत की जाती है। गायन के चारों प्रकारों को (चतु = चार, रंग–भेद, प्रकार) एक ही रचना में प्रस्तुत किये जाने के कारण इसका नाम चतुरंग रखा गया है। इस प्रकार चतुरंग एक इंद्रधनुषीय गायन शैली प्रतीत होती है।

तराना

'तराने' में शब्दों का विशेष महत्त्व नहीं होता। इसमें ना, ता, रे, दिर–दिर, नोम, तोम दानी, ओदानी इत्यादि निरर्थक शब्दों का प्रयोग करते हैं। तबला तथा मृंदग के बोल और कुछ फारसी भाषा के शब्द भी मिले रहते हैं। तराने की सुन्दरता राग और लय पर आधारित रहती है। 'तराना' मध्यलय से प्रारम्भ करके द्रुतलय में समाप्त किया जाता है। 'तराना' द्रुत लय में ही सुन्दर लगता है। अनेक गायक 'ख्याल' के बाद 'तराना' गायकी प्रस्तुत करते हैं। इसमें तन्त्रकारी जैसी लयकारी के बड़े–बड़े कमाल दिखाये जाते हैं। दक्षिण भारत के भरतनाट्यम नृत्य में प्रयुक्त तराने को 'तिल्लाना' कहते हैं। इसे अधिकतर तीनताल में ही गाया जाता है।

पंडित विनायक राव पटवर्धन

ग्वालियर घराने में तराना गायन का सर्वाधिक प्रचार रहा है। तराने की उत्पत्ति का संबंध अमीरखुसरो से माना जाता है। वर्त्तमान सदी की प्रख्यात गायिका वीणा सहस्त्रबुधै ने तराने के संबंध में वैदिक काल के निबद्ध गान, मराठी संत दासोपंत (16 वीं सदी) तथा कथक नृत्य में प्रयोग के महत्त्वपूर्ण एतिहासिक साक्ष्य व प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। पंडित कृष्णराव शंकर, पंडित विनायक राव पटवर्धन, उस्ताद निसार हुसैन खां, उस्ताद अमीर खां, मालिनी राजुरकर, वीणा सहस्त्रबुधै, उस्ताद राशिद खां तराना गायन के महत्त्वपूर्ण कलाकार हैं।

मुख्य बिन्दु

- ताल व लय युक्त शुद्ध नर्तन क्रिया जिसमें अभिनय व भाव शून्यता हो नृत्त कहलाता है।
- किसी कथा अथवा वाक्य के अर्थ को अभिनय द्वारा प्रदर्शित करके आनंद का सृजन करना नाट्य है।
- रस व भाव प्रदर्शन युक्त नृत्त क्रिया नृत्य कहलाती है।
- वीरता, आवेश, रौद्रता, क्रोध युक्त पुरूष प्रधान नृत्य तांडव तथा श्रृंगार, कोमलता, विलासमयी नृत्य लास्य श्रेणी के नृत्य कहलाते हैं।

- मनुष्य की चेष्टाओं – सोचना, बोलना, करना आदि का नाट्य प्रयोग अभिनय है, अभिनय के 4 अंग है – आंगिक, वाचिक, सात्विक, आहार्य।
- पर+मिलु अर्थात् किन्हीं दो प्रकार के बोल से निर्मित रचना प्रमिलु कहलाती है।
- अभिनय दर्पण के अनुसार नृत्य में (23) संयुत (दोनों हाथों के प्रयोग युक्त) तथा (28) असंयुत (एक हाथ के प्रयोग युक्त) मुद्राएं हैं।
- शब्दों के द्वारा विभिन्न भावों को प्रकट करना 'ठुमरी' गायन की विशेषता है। 'ठुमरी' एक बोल प्रधान व श्रृँगारिक गायकी है।
- भक्ति भाव से ओत प्रोत ईश्वर संबंधी पद 'भजन' कहलाते हैं।
- एक ही रचना में 4 भिन्न अंग (ख्यालनुमापद + तराना + सरगम + त्रिवट) का प्रयोग 'चतुरंग' कहलाता है।
- राग व तालबद्ध निरर्थक शब्दों (दानि,त,दारे,दीम....) के प्रयोग युक्त रचना तराना कहलाती है।
- प्रख्यात गायिका स्व.वीणा सहस्त्रबुधै ने तराना गायन शैली हेतु गहन शोध किया है।
- ग्वालियर घराने में तराना गायन का विशेष प्रचार रहा है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. नाटक का समानार्थी शब्द है –
   (अ) नाट्य (ब) नृत्त (स) नृत्य (द) नुपुर
2. "भावाभिनयहीनं तु नृत्तमित्यभिधीयते" कथन किसके लिए प्रस्तुत हुआ है–
   (अ) नृत्य (ब) नाट्य (स) नृत्त (द) अभिनय
3. शास्त्रों में तांडव नृत्य का प्रतीक किन्हें माना जाता है ?
   (अ) ब्रह्मा (ब) विष्णु (स) शिव (द) पार्वती
4. शारीरिक अंग, प्रत्यंग व उपांगों के प्रयोग युक्त अभिनय कहलाता है ।
   (अ) सात्विक (ब) वाचिक (स) आहार्य (द) आंगिक
5. दो भिन्न प्रकार के बोलों से युक्त रचना कहलाती है–
   (अ) भाव (ब) रस (स) तत्कार (द) प्रमलु
6. निम्नलिखित में से शास्त्रीय संगीत की उपशास्त्रीय विधा है।
   (अ) ध्रुपद (ब) ख्याल (स) ठुमरी (द) तराना
7. चतुरंग के 4 अंगों का सही क्रम छांटिए –
   (अ) पद, तराना, त्रिवट, सरगम (ब) तराना, पद, सरगम, त्रिवट
   (स) त्रिवट, सरगम, तराना, पद (द) पद, तराना, सरगम, त्रिवट
8. विकल्प जो भजन गायन की परंपरा से संबंधित नहीं है –
   (अ) सगुण (ब) अष्टछाप (स) निर्गुण (द) मांड
9. तराने के लिए प्रसिद्ध कलाकार है –
   (अ) सविता देवी (ब) वीणा सहस्त्रबुद्यै
   (स) अल्लाजिलाई बाई (द) बेगम अख्तर

उत्तरमाला– (1) अ (2) स (3) स (4) द (5) द (6) स (7) द (8) द (9) ब

लघुउत्तर प्रश्न–

1. नृत्त, नृत्य व नाट्य की प्रमुखता को दर्शाने वाला एक एक तथ्य लिखिए।
2. तांडव व लास्य के किन्हीं दो–दो अंतर/भेद को लिखिए।
3. कथक नृत्य में 'प्रमलु' को स्पष्ट कीजिए।
4. भजन गीत शैली का परिचय लिखिए।
5. तराना व चतुरंग में अंतर स्पष्ट कीजिए।
6. ठुमरी के प्रसिद्ध कलाकारों के नाम लिखिए।
7. 'चतुरंग' क्या है ? समझाइये।

निबंधात्मक प्रश्न –

1. अभिनय क्या है ? इसके अंगों की विस्तृत चर्चा कीजिए।
2. अभिनयदर्पण के संदर्भ द्वारा नर्तन कला के तीनों भेदों की व्याख्या कीजिए ?

अभ्यास बिन्दु

1. नृत्त, नृत्य व नाट्य के भेद का प्रायोगिक अभ्यास करें।
2. किसी टेलीविजन सीरियल द्वारा अभिनय के अंगों को समझकर कक्षा में चर्चा करें।
3. हस्त मुद्राओं का चार्ट बनाकर कक्षा में लगावे तथा अपने संग्रह में भी रखें।
4. पाठ्यक्रम में वर्णित गीत शैलियों को सुनकर इनका अंतर समझें।
5. प्रत्येक शैली की कुछ रिकार्डिंग अपने संग्रह में रखें।
6. प्रत्येक शैली के दो–दो कलाकारों के जीवन परिचय का अध्ययन करें।